दैनिक भास्कर

Date: 14-10-25

किसानों की वास्तविक आमदनी बढ़ाने की जरूरत

संपादकीय

पिछले हफ्ते सरकार ने रबी फसल की एमएसपी घोषित की। इसमें असाधारण रूप से नीतिगत दोष के तहत गेहूं का एमएसपी (सीएसीपी द्वारा निर्धारित ए-2 एफ एल लागत मूल्य- 1239 रु.) दूने से ज्यादा 2585 रु. (जो कि 109% है) घोषित किया गया है जबकि दलहन और तिलहन की फसलों का औसतन 60-70% । यानी गेहूं बोने वाले किसानों को वरीयता दी गई है। साथ ही सरकारी खरीद भी गेहूं और चावल की ज्यादा होती है, जबकि दलहन और तिलहन उपेक्षित रहते हैं। नतीजा यह है कि सरकार के पास पिछले कुछ वर्षों से भंडारण सीमा से कई गुना ज्यादा गेहूं-चावल गोदामों में चूहों की खुराक बनते रहे हैं और एफसीआई कंगाल होता रहा है। यहां तक कि गेहूं की नई एमएसपी दर अंतरराष्ट्रीय बाजार की दर से भी 29-30% ज्यादा है। रखरखाव और अंतिम खपत बिंदु तक पहुंचाने में सरकार को हर किलो गेहूं पर कम से कम 12-15 रुपया प्रशासनिक खर्च लगता है। अब तस्वीर का दूसरा पहलू देखें। किसानों को दूने से ज्यादा लागत मिलने के बाद भी किसान फटेहाल क्यों है? क्यों उसके बच्चे नोएडा, केरल, तमिलनाडु, पंजाब और गुजरात में मजदूरी करने को मजबूर हैं? क्यों देश के 2050 किसान रोजाना खेती छोड़ शहरों में ठेला चलाते हैं ? और क्यों कई वर्षों से हर 48 मिनट पर एक किसान आत्महत्या कर रहा है ? किसान की वास्तविक आय बढ़ानी होगी।

Date: 14-10-25

सीजेआई पर फेंके जूते का निशाना न्याय व्यवस्था थी

राजदीप सरदेसाई

एक सवाल है। अगर सीजेआई पर कोर्ट में जूता फेंकने वाले वकील का नाम राकेश किशोर के बजाय रहीम खान होता तो क्या होता? क्या उसे बिना सजा छोड़ा जाता? या उस पर राष्ट्रीय सुरक्षा कानून, जन सुरक्षा कानून (अगर वो कश्मीरी मुसलमान होता तो) या गैरकानूनी गतिविधि निरोधक कानून के तहत आरोप लगाए जाते? यहां मेरा मकसद किसी को भड़काना नहीं, बल्कि उस इको-सिस्टम को उजागर है, जिसमें लोगों की धारणाएं न्याय प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं।

पिछले महीने सीजेआई गवई ने खजुराहो के एक मंदिर में भगवान विष्णु की क्षतिग्रस्त मूर्ति के पुनर्निर्माण की याचिका खारिज कर दी थी। इसे जनहित याचिका के बजाय 'प्रचार-हित याचिका' बताते हुए गवई ने कहा था कि याचिकाकर्ता को याचिका दायर करने के बजाय स्वयं भगवान से ही कुछ करने के लिए कहना चाहिए। यहां पर जज का यह व्यंग्यात्मक लहजा यकीनन गैरजरूरी था। लेकिन ध्यान रखें कि ये महज टिप्पणियां थीं। याचिका तो इसलिए खारिज की गई, क्योंकि कोर्ट ने कहा कि इस पर भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण निर्णय करेगा।

लेकिन सोशल मीडिया पर बैठी 'हथियारबंद' सेना के पास फैसले के तर्क पढ़ने का समय कहां था? उन्माद फैलाने के लिए जस्टिस गवई की टिप्पणी ही काफी थी। सुनियोजित आक्रोश ने सीजेआई को यह सफाई देने को मजबूर कर दिया कि वे सभी धर्मों में आस्था रखते हैं, सभी प्रकार के धर्मस्थलों में जाते हैं और 'सच्ची धर्मनिरपेक्षता' में उनका भरोसा है। लेकिन यह स्पष्टीकरण आक्रोशित भीड़ को शांत करने के लिए काफी नहीं था।

मीम्स, हैशटैग और यूट्यूब वीडियो के जरिए गवई की निंदा चलती रही। इसी तनावपूर्ण माहौल में एक 71 वर्षीय वकील ने गवई पर जूता फेंकने का फैसला कर लिया। 'सनातन धर्म का अपमान, नहीं सहेगा हिंदुस्तान'। ऐसी किसी घटना पर दिल्ली पुलिस स्वत: संज्ञान लेकर कार्रवाई करती, लेकिन उसने हाथ बांधे रखे। गवई ने बड़ी गरिमा के साथ इस मामले में मुकदमा दर्ज कराने से इनकार कर दिया, लेकिन उन वकील ने कहा- 'मैं फिर से ऐसा करूंगा'। मानो, उन्हें भरोसा हो कि अदालत की स्पष्ट अवमानना के बावजूद कानून उन्हें छू भी नहीं सकता।

हमें इस पर अचम्भा भी नहीं होना चाहिए। क्योंकि कानून मंत्री अर्जुन मेघवाल ने भी इस मामले पर चुप्पी साधे रखी। प्रधानमंत्री को यह ट्वीट करने में आठ घंटे लगे कि जूता फेंकना 'एक निंदनीय कार्य है, जिसने हर भारतीय को नाराज किया है।'

प्रधानमंत्री के कड़े शब्द स्वागतयोग्य हैं, लेकिन याद करें कि जब 2019 में भाजपा सांसद प्रज्ञा सिंह ठाकुर ने गोडसे का महिमामंडन किया था, तब भी पीएम ने कहा था कि वे प्रज्ञा को कभी भी पूरी तरह माफ नहीं कर पाएंगे। लेकिन साध्वी के खिलाफ ठोस कार्रवाई नहीं की गई।

एडवोकेट किशोर भी ऐसी ही विचारधारा का हिस्सा हैं, जहां कोई भी खुद को सनातन का 'रक्षक' मान बैठता है। अंतर बस इतना है कि गोडसे की तुलना में किशोर ने गुस्सा निकालने के लिए एक अपेक्षाकृत निरापद हथियार को चुना। लेकिन दोनों ही मामलों में निहित असहिष्णुता की मानसिकता से इनकार नहीं किया जा सकता।

कथित तौर पर 'हिंदुओं की भावनाओं को ठेस' पहुंचाने वाला कोई भी कृत्य हिंसक प्रतिक्रिया के लिए काफी है। ये लोग उन इस्लामिस्टों से कितने अलग हैं, जो भावनाएं आहत होने का दावा करते हुए 'सर तन से जुदा' का नारा लगाते हैं? आहत भावनाओं के गणतंत्र में हिंसा का सामान्यीकरण क्यों किया जाता है?

इस मामले का एक और पहलू परेशान करने वाला है। जस्टिस गवई सीजेआई के उच्च संवैधानिक पद पर आसीन हुए दलित वर्ग के दूसरे व्यक्ति हैं। उनके पिता आरएस गवई रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया आंदोलन में एक प्रमुख चेहरा थे। जस्टिस गवई का इस पद तक पहुंचना किसी आम्बेडकरवादी के लिए एक ऐसे समाज का सपना पूरा होने जैसा है, जिसमें उत्पीड़ित जातियों के लिए समान अवसर उपलब्ध हों।

दलित आंदोलन वाले परिवार की पृष्ठभूमि से होने के कारण जस्टिस गवई के लिए ऐसे सुनियोजित हमलों का जोखिम और बढ़ जाता है। एक साल पहले जब जस्टिस गवई ने 'बुलडोजर न्याय' के खिलाफ एक आदेश देते हुए इसे असंवैधानिक बताया था, तब भी वे दक्षिणपंथियों के ऑनलाइन दुष्प्रचार अभियान के शिकार बने थे।

इसीलिए जूता फेंकने की घटना को वैसे ही देखना चाहिए, जैसी वह है- एक धर्मनिरपेक्ष संवैधानिक ढांचे में किसी धर्म की सर्वोच्चता थोपने की कोशिश। उसका निशाना जस्टिस गवई नहीं थे, उसका लक्ष्य तार्किक और निष्पक्ष समझी जाने वाली न्याय व्यवस्था को कमजोर करना था।

जूता फेंकने की घटना केवल जस्टिस गवई ही निशाने पर नहीं थे। उसका लक्ष्य तार्किक और निष्पक्ष समझी जाने वाली न्यायिक व्यवस्था को कमजोर करना था। आहत भावनाओं के गणतंत्र में हिंसा का सामान्यीकरण क्यों किया जाता है?

दैनिक जागरण

Date: 14-10-25

गाजा शांति समझौता

संपादकीय

अंततः गाजा में शांति प्रस्ताव के पहले चरण पर अमल प्रारंभ हो गया। हमास की ओर से इजरायली बंधक छोड़ने के साथ इजरायल ने फलस्तीनी कैदी रिहा करने शुरू कर दिए। अब निगाह इस पर होगी कि शांति समझौते के अगले चरण कब पूरे होते हैं और वे सही तरह पूरे होते भी हैं या नहीं?

इस पर संशय इसलिए है, क्योंकि यह स्पष्ट नहीं कि इजरायली सेना गाजा में कितना पीछे हटेगी और वहां के प्रशासन को संचालित करने का कैसा तंत्र तैयार होगा और क्या उस पर हमास सहमत होगा? इसके अतिरिक्त जहां हमास को हथियार छोड़ने हैं, वहीं इजरायल को स्वतंत्र फलस्तीन देश की राह आसान करनी है।

हमास का कहना है कि हथियार तब छोड़े जाएंगे, जब स्वतंत्र फलस्तीन का रास्ता साफ होगा। इस पर इजरायल तैयार नहीं दिख रहा है। यह ठीक है कि स्वयं की ओर से प्रस्तावित गाजा शांति समझौते पर अमल शुरू होने के अवसर पर

मिस्र जाने के पहले इजरायल पहुंचे अमेरिकी राष्ट्रपति ने अपनी पहल को पश्चिम एशिया में शांति की स्थापना का पथ करार दिया और इजरायली प्रधानमंत्री से ईरान से समझौता करने को कहा।

ऐसे किसी समझौते की सूरत तब बनेगी, जब ईरान इजरायल को मिटाने की अपनी जिद छोड़ेगा। इजरायल उस पर भरोसा नहीं कर सकता, क्योंकि वह उसके लिए खतरा बने हमास, हिजबुल्ला आदि की पीठ पर हाथ रखे हुए है और यमन में काबिज हाउती विद्रोहियों को भी अपना समर्थन दे रहा है। इसी कारण ईरान और इजरायल में युद्ध हुआ था, जिसमें अमेरिका ने भी दखल दिया था।

अमेरिकी राष्ट्रपति ने इजरायली संसद को संबोधित करते हुए गाजा शांति समझौते को पश्चिम एशिया की ऐतिहासिक सुबह की संज्ञा दी। वे कुछ भी दावा करें, फिलहाल यह कहना कठिन है कि प्रमुख मुस्लिम देश इजरायल को मान्यता देने के लिए तैयार होंगे। भले ही ट्रंप यह कह रहे हों कि गाजा शांति समझौते को सभी मुस्लिम देशों का समर्थन मिला, लेकिन वस्तुस्थिति इससे अलग है।

जब यह समझौता सामने आया था, तब उसे समर्थन देने और ट्रंप की प्रशंसा करने वालों में पाकिस्तान भी था, पर अब वह इस समझौते को समर्थन देने से केवल पीछे ही नहीं हट गया, बल्कि उसने अपने यहां ऐसा माहौल बनाया कि उसके विरोध में कट्टरपंथी तत्व सड़क पर उतर आए।

यह मानने के अच्छे-भले कारण हैं कि पाकिस्तान ने गाजा शांति समझौते को नकारने के लिए ही कट्टरपंथी तत्वों को सड़कों पर उतरने के लिए उकसाया और फिर उन पर गोलियां भी चलवाईं, ताकि दुनिया और विशेष रूप से अमेरिका को यह संदेश जाए कि उसके लिए गाजा शांति समझौते को स्वीकार करना संभव नहीं। एक तरह से पाकिस्तान ने उस अब्राहम समझौते को आगे बढ़ने से रोक दिया, जिसके जरिये ट्रंप यह चाहते हैं कि सभी मुस्लिम देश इजरायल को मान्यता दें।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 14-10-25

नवाचार के लिए नोबेल

संपादकीय

नोबेल शांति पुरस्कार के उलट अल्फ्रेड नोबेल की स्मृति में दिया जाने वाला अर्थशास्त्र का स्वेरिजेस रिक्सबैंक पुरस्कार आमतौर पर राजनीतिक पुरस्कार नहीं माना जाता है। परंतु निश्चित तौर पर यह पुरस्कार ये तो बताता ही है कि मुख्य धारा में आर्थिक नीति को किस तरह देखा जा रहा है। पुरस्कार के शुरुआती वर्षों में यानी 1969 के बाद नीतिगत पेशे की विकास और कल्याण आधारित सोच को पुरस्कृत किया जाता था। वॉशिंगटन सहमति के उभार के दौर में शिकागो स्कूल के नवशास्त्रीय मॉडल के प्रमुख विचारकों को एक के बाद एक यह सम्मान दिया गया।

अभी हाल के वर्षों में यानी वित्तीय बदलाव के बाद पूर्ण प्रतिस्पर्धा को लेकर बढ़ती शंका और श्रम बाजारों को लेकर चिंताओं ने ऐसे कई विद्वानों को यह पुरस्कार दिलाया जिनका काम इन विषयों से संबंधित था। अब लगातार दो साल से रॉयल स्वीडिश एकेडमी ऑफ साइंसेज ने उस काम को पुरस्कृत करना शुरू किया है जो संस्थानों, नवाचार और संस्कृति पर केंद्रित हो।

वर्ष 2025 का पुरस्कार जीतने वाले जोएल मोकिर, फिलिप एगियों और पीटर हॉविट को इस अध्ययन के लिए जाना जाता है कि विभिन्न अर्थव्यवस्थाएं और समाज नवाचार को लेकर किस तरह की प्रतिक्रिया देते हैं और नवाचार आधारित संस्कृतियां कैसे विकसित होती हैं। यह नीति निर्माण प्रणाली में भविष्य की आर्थिक वृद्धि के स्रोतों को लेकर व्याप्त एक व्यापक चिंता को प्रदर्शित करता है। खासतौर पर पश्चिमी देशों में जो तकनीकी प्रतिस्पर्धा में चीन से पीछे रह जाने को लेकर चिंतित हैं।

प्रोफेसर मोकिर जहां एक आर्थिक इतिहासकार हैं वहीं प्रोफेसर एगियों और हॉविट कहीं अधिक पारंपरिक नवशास्त्रीय तरीकों का प्रयोग करते हैं। उनका सबसे चर्चित पर्चा जोसेफ शुंपीटर के काम पर आधारित है जिन्हें 20वीं सदी की शुरुआत के सबसे प्रभावशाली अर्थशास्त्रियों में से एक माना जाता है। उन्होंने शुंपीटर के 'रचनात्मक विनाश' के सिद्धांत को औपचारिक स्वरूप प्रदान किया जो पूंजीवादी विकास प्रक्रिया के केंद्र में मौजूद है।

इसमें पुरानी प्रक्रियाएं और तकनीक निरंतर नई प्रक्रियाओं और तकनीकों द्वारा प्रतिस्थापित होती रहती हैं। यही प्रक्रिया आर्थिक वृद्धि का कारण बनती है। उन्होंने इस सिद्धांत को विकास और निवेश दरों के साथ गहराई से जोड़ दिया। इस समय जो लोग वर्तमान व्यवस्था से लाभ कमा रहे हैं और जो उद्यमी उनकी जगह लेना चाहते हैं, उनके बीच बुनियादी रूप से टकराव के हालात हैं।

इस बीच प्रोफेसर मोकिर का काम इस बात की पड़ताल करता है कि वृद्धि के लाभार्थी कब और कैसे परास्त पक्षों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। केवल एक बार यानी 1993 में ही नोबेल पुरस्कार ऐसे विद्वानों को मिला है जो मुख्य रूप से आर्थिक इतिहासकार के रूप में पहचाने जाते हैं। 1993 का पुरस्कार अतीत के नवाचार और संपत्ति अधिकारों के अध्ययन लिए दिया गया था। इस वर्ष का पुरस्कार एक तरह से उसी कड़ी का हिस्सा है।

प्रोफेसर मोकिर असल में हॉविट और एगियों के सिद्धांत को इस संकेत के साथ जटिल बना देते हैं कि नवाचारों से उत्पन्न लाभ पाने वालों की जीत के लिए आधार केवल आर्थिक कारक नहीं बल्कि संस्कृति भी है। यानी समाज में नए

विचारों और नव प्रवर्तकों की स्थिति, नव प्रवर्तनों को प्रसारित करने की अनुमति देने वाली संस्थाओं की व्यापकता, परिवर्तन और रचनात्मकता की आवश्यकता में राजनीतिक विश्वास।

वह इस बात को उन समाजों के गहरे अध्ययन के माध्यम से लागू करते हैं जो आर्थिक रूप से विकसित हुए। उदाहरण के लिए 1800 के दशक का ब्रिटेन। साथ ही वे उन समाजों का अध्ययन भी करते हैं जो विकसित नहीं हो सके जबकि उन्हें होना चाहिए। उदाहरण के लिए उसके ठीक कुछ पहले की सदियों में चीन। पिछले वर्ष का नोबेल पुरस्कार संस्थागत अर्थशास्त्र के विद्वानों को दिया गया था। उससे यह सबक निकला कि दीर्घकालिक वृद्धि किसी अर्थव्यवस्था के संस्थागत आधार से निकलती है।

अगर भारतीय नीति निर्माता इस वर्ष के पुरस्कार से भी ऐसे ही सबक खोज रहे हैं तो वह सबक यह है कि नवाचार किसी समाज की प्रगति का इकलौता तरीका है और वह तब तक नहीं होगा जब तक कि यथास्थिति की जकड़न को तोड़ा नहीं जाएगा और जोखिम नहीं उठाया जाएगा। अगर यह सच है तो इसका स्वाभाविक निष्कर्ष यह होगा कि भारत और उसकी कंपनियां शोध पर बहुत कम खर्च करती हैं और हमारी सुधार की प्रक्रिया बहुत धीमी तथा लाभ उठाने वाले यथास्थितिवादियों के साथ है।

जनसत्ता

Date: 14-10-25

संघर्ष के मोर्चे

संपादकीय

पाकिस्तान और अफगानिस्तान के बीच सीमा पर हाल में हुई हिंसक झड़पों से दोनों देशों के बीच तनाव बढ़ गया है। वैसे दोनों और संघर्ष के मोर्चे इस तरह खुलने की यह पहली घटना नहीं है। वर्ष 2021 में अफगानिस्तान में तालिबान का शासन कायम होने के बाद भी यह सिलसिला जारी है। गौर करने वाली बात यह है कि पाकिस्तान पहले जिस तालिबान का हितैषी कहलाता था, आज वह उनके खिलाफ ही खड़ा हो गया है। इसका कारण यह है कि पाकिस्तान अपने इलाके में हो रहे आतंकी हमलों के लिए तहरीक-ए-तालिबान (टीटीपी) को जिम्मेदार मानता है और यह आरोप लगाता रहा है कि उसे अफगानिस्तान की मौजूदा तालिबान सरकार का संरक्षण प्राप्त है। दोनों देशों के सुरक्षाबलों के बीच संघर्ष की यह घटना ऐसे समय में हुई, जब अफगानिस्तान के विदेश मंत्री आमिर खान मुत्ताकी भारत दौरे पर आए। ऐसे में यह सवाल भी उठ रहा है कि क्या पाकिस्तान को अफगानिस्तान का भारत के साथ मेलजोल बढ़ाना रास नहीं आ रहा है ? दरअसल, पाकिस्तान के गठन के बाद से ही अफगानिस्तान के साथ उसके संबंध सामान्य नहीं रहे हैं। वर्ष 1949 में आजाद पश्तूनिस्तान बनाने के मुद्दे पर पाकिस्तान ने अफगानिस्तान की आदिवासी बस्तियों पर हमले किए थे। इसके बाद दोनों देशों के बीच सीमा पर हिंसक झड़पों का सिलसिला शुरू हो गया । पाकिस्तान का दावा है कि जब से अफगानिस्तान में तालिबान की सत्ता आई है, टीटीपी ने अपनी गतिविधियां तेज कर दी हैं । उधर, अफगानिस्तान का आरोप है कि पाकिस्तान के सुरक्षाबल बिना कारण उसके सीमा क्षेत्र में हवाई हमले कर रहे हैं। दोनों देशों के आपसी

विवाद की एक वजह सीमा पर 1893 में ब्रिटिश हुकूमत के दौरान खींची गई 'डूरंड रेखा' भी है, जिसे पाकिस्तान मान्यता देता है, लेकिन अफगानिस्तान इसे अस्वीकार करता रहा है। गौरतलब है कि पाकिस्तान जिस तरह से भारतीय सीमा पर आतंकियों की घुसपैठ कराता है, उसी तरह के आरोप अब वह अफगानिस्तान पर लगा रहा है। बहरहाल, आने वाले दिनों में दोनों देशों के बीच तनाव कम होगा या संघर्ष तेज होगा, यह देखने वाली बात होगी।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 14-10-25

कृषि समृद्धि की नई राह

संपादकीय

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने किसानों की समृद्धि की नयी राह बनायी है। 24,000 करोड़ रुपये की लागत से शुरू की गई पीएम धन-धान्य कृषि योजना भारतीय कृषि के परिदृश्य में एक नए अध्याय की शुरुआत मानी जा सकती है। यह केवल एक सरकारी योजना नहीं, बल्कि ग्रामीण भारत के विकास और किसानों की समृद्धि की दिशा में एक दूरदर्शी पहल है। जब जलवायु परिवर्तन, घटती उत्पादकता, और बढ़ती लागतों के बीच किसान जीवनयापन के संकट से जूझ रहे है, तब यह योजना उन्हें नई आशा और आत्मविश्वास देने का कार्य करेगी। इस योजना का मूल उद्देश्य देश के हर खेत तक सिंचाई सुविधा पहुंचाना, फसल उत्पादकता में वृद्धि करना, किसानों को सुलभ ऋण और भंडारण की बेहतर व्यवस्था प्रदान करना है। भारत जैसे विशाल कृषि प्रधान देश में आज भी लाखों किसान वर्षा आधारित खेती पर निर्भर है। अनियमित मानसून और सीमित सिंचाई संसाधन किसानों के जीवन को अनिश्चित बनाते हैं। ऐसे में, यह योजना जल प्रबंधन और सिंचाई के विस्तार के माध्यम से खेती को स्थायित्व और सुरक्षा प्रदान करेगी धन-धान्य योजना का एक महत्वपूर्ण पहलू आधुनिक भंडारण सुविधाओं के सृजन से जुड़ा है। भारत में हर वर्ष लाखों टन अनाज भंडारण की कमी के कारण खराब हो जाता है।

अब आधुनिक गोदामों, कोल्ड स्टोरेज और ग्रामीण स्तर पर वेयरहाउसिंग की व्यवस्था किसानों को अपनी उपज सरक्षित रखने में मदद करेगी। इससे उन्हें फसल को सही मूल्य मिलने तक बेचने का इंतज़ार करने का अवसर मिलेगा, और बिचौलियों पर उनकी निर्भरता घटेगी। किसानों को सलभ और कम ब्याज पर ऋण उपलब्ध कराना भी इस योजना की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। छोटे और सीमांत किसान अक्सर बैंकिंग प्रणाली से दूर रह जाते हैं और स्थानीय साहूकारों के शोषण का शिकार बनते है। अब उन्हें सस्ते ऋण की सुविधा मिलेगी, जिससे वे आधुनिक बीज, कृषि यंत्र और नई तकनीकों को अपनाने में सक्षम होंगे। योजना का एक अन्य अहम आयाम कृषि में तकनीकी नवाचार को बढ़ावा देना है। ड्रोन आधारित फसल निगरानी, स्मार्ट सिंचाई प्रणाली, मिट्टी परीक्षण, और जैविक खेती को प्रोत्साहन जैसी पहलें भारतीय कृषि को आत्मनिर्भर और वैश्विक प्रतिस्पर्धा के योग्य बनाएंगी। यह कदम देश को डिजिटल एग्रीकल्चर के नए

युग में ले जाने की क्षमता रखता है। भारत की अर्थव्यवस्था की रीढ़ आज भी कृषि ही है। यदि यह योजना ईमानदारी, पारदर्शिता और राज्य सरकारों के सहयोग से सही दिशा में लागू होती है, तो यह केवल किसानों की आय बढ़ाने का माध्यम नहीं, बल्कि ग्रामीण पुनर्जागरण का आधार बनेगी।

इससे कृषि को उद्योग से जोड़ने, ग्रामीण युवाओं को रोजगार देने और आत्मनिर्भर भारत के सपने को साकार करने की दिशा में ठोस प्रगति होगी। निस्संदेह, पीएम धन-धान्य योजना भारतीय कृषि को नई ऊर्जा और दिशा प्रदान करने वाली ऐतिहासिक पहल है। यदि इसका क्रियान्वयन प्रभावी ढंग से हुआ, तो यह देश के खेतों को हरियाली से, और किसानों के चेहरों को समृद्धि की मुस्कान से भर देगी। पीएम धन-धान्य कृषि योजना के दूरगामी परिणाम अत्यंत सकारात्मक हो सकते है। इस योजना से कृषि क्षेत्र में आधुनिक तकनीक और सिंचाई सुविधाओं का विस्तार होगा, जिससे उत्पादकता बढ़ेगी और किसानों की आय दोगुनी करने का लक्ष्य साकार हो - सकेगा। भंडारण और विपणन तंत्र के सशक्त होने से फसल की बर्बादी घटेगी। ग्रामीण अर्थव्यवस्था को नई गति मिलेगी, रोजगार सृजन बढ़ेगा और कृषि क्षेत्र आत्मनिर्भरता की दिशा में आगे बढ़ेगा। दीर्घकाल में यह योजना भारत को कृषि शक्ति से कृषि समृद्ध राष्ट्र बनाने में सहायक सिद्ध होगी।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 14-10-25

अमन की ओर गाजा

संपादकीय

गाजा में अमन-चैन की ओर जो सुखद कदम बढ़े हैं, उनका स्वागत होना चाहिए। फलस्तीनी उग्रवादी समूह हमास ने जीवित बचे 20 इजरायली बंधकों को रिहा कर दिया और इसके बाद इजरायल में जो खुशी का माहौल है, उसे महसूस किया जा सकता है। 738 दिन बाद जो बंधक रिहा हुए हैं, वे अमन-चैन के प्रयासों की सफलता के जीवंत उदाहरण हैं। जो बंधक हमास की कैद से लौट न पाए या जिनकी मृत्यू हो गई, उन्हें भूलना मुश्किल है, पर भुलाना पड़ेगा। ठीक ऐसे ही, गाजा में जो निरपराध मारे गए हैं, उनके प्रति भी पूरी सहानुभूति की सार्थकता तब है, जब गाजा में फिर किसी निरपराध की मौत की आशंकाओं को हर मुमकिन कोशिशों से टाला जाए। इजरायल को यहां ज्यादा उदारता का परिचय देना होगा, क्योंकि इसमें कोई संदेह नहीं है कि वह बहुत ताकतवर है। हमास को भी हिंसा से बचना चाहिए। द्वि-राष्ट्रीय व्यवस्था को जमीन पर ठीक से साकार करना हमास का लक्ष्य होना चाहिए। हमास को अपनी छवि सुधारने की चिंता करनी चाहिए, अगर उस पर यकीन किया गया है, तो उसे खरा उतरना होगा। गाजा में किसी भी सूरत में हिंसा की वापसी नहीं होनी चाहिए।

अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने इजरायल को एक तरह से पाबंद करने की कोशिश की है कि युद्ध के मैदान में उसे और कुछ हासिल नहीं करना है, उसे अब मध्य-पूर्व में शांति के लिए काम करना होगा । इजरायल वाकई शांति के लिए काम कर सकता है। साथ ही पूरे पश्चिम एशिया के मानव विकास में सहायक हो सकता है। इजरायली सत्ता प्रतिष्ठान को

हिंसा से संतोष करना चाहिए, लेकिन इजरायल से दुश्मनी रखने वाले संगठनों को भी सचेत रहना चाहिए। इजरायल की नीति स्पष्ट है, वह अपनी रक्षा के लिए चरम आक्रामकता का परिचय देता रहा है। हमें यह भी उल्लेख करना चाहिए कि 7 अक्तूबर, 2023 को हमास ने जैसी हिंसा की थी, वह अक्षम्य थी। फिर भी इजरायल करीब 2,000 फलस्तीनियों को रिहा करेगा, तो इसका मतलब है कि वह भविष्य की ओर देख रहा है। गाजा को भी अपना भविष्य देखना चाहिए। वहां कब तक लोग मारे जाते रहेंगे? खैर, संघर्ष विराम का फायदा यह हो रहा है कि तमाम तरह के अभावों से ग्रस्त गाजा तक अब बड़े पैमाने पर मदद पहुंचने की शुरुआत हो गई है। खासकर मिस्र की ओर से जरूरी सामान की बड़े पैमाने पर आपूर्ति हो रही है। इससे गाजा में युद्धग्रस्त लोग वाकई राहत की सांस लेंगे और अपनी जिंदगी को फिर से खड़ा करेंगे।

गौर करने की बात है, इजरायली संसद को संबोधित करते हुए राष्ट्रपति ट्रंप ने गाजा के पुनर्निर्माण में पूरी मदद का वादा किया है। साथ ही, फलस्तीनियों से आतंकवाद और हिंसा के रास्ते को हमेशा के लिए छोड़ देने का आग्रह किया है। ऐसे ही आग्रह की जरूरत दुनिया के अनेक देशों में है। अनेक देश हैं, जो आतंकवाद को पालते - पोषते हैं। आतंकवाद के खिलाफ ईमानदारी केवल गाजा में नहीं, बल्कि बाकी दुनिया में भी बहाल होनी चाहिए। जो भी देश आतंकवाद का किसी भी तरह से परोक्ष या प्रत्यक्ष समर्थन करते हैं, उन्हें खुद में सुधार लाना चाहिए। दुनिया में अनेक देश हैं, जिनके पास हमास की निंदा के लिए शब्द कम पड़ जाते हैं और जो इजरायल को ही आतंकवाद का समर्थक मानते रहे हैं। अब सबसे बेहतर तो यही होगा कि इजरायल व फलस्तीन, दोनों ही एक-दूसरे का आदर करें। एक-दूसरे को मिटा देने के हैवानियत भरे ख्वाब से हमेशा के लिए पीछा छुड़ा लें।

Date: 14-10-25

तालिबान सरकार को मान्यता देनी चाहिए

हैप्पी जैकब, (विजिटिंग प्रोफेसर, शिव नाडर यूनिवर्सिटी)

अगस्त 2021 में तालिबान द्वारा काबुल में सत्ता संभालने के बाद पहली बार भारत ने उसके विदेश मंत्री आमिर खान मुत्ताकी की मेजबानी की है। अफगानिस्तान की अधिकृत सरकार के तौर पर तालिबान को मान्यता दिए बगैर उससे बातचीत की नई दिल्ली की नीति थोड़ी धीमी, मगर स्थिरता लिए रही है। वास्तव में, रूस के अलावा अब तक किसी बड़े गैर-इस्लामी देश ने तालिबान सरकार को मान्यता नहीं दी है और रूस ने भी हाल ही में यह कदम उठाया है।

यूं तो चार साल पहले काबुल की सत्ता में आने के पहले से भारत तालिबान से संवाद करता रहा है, मगर मुत्ताकी की भारत यात्रा के दौरान उन्हें आधिकारिक तौर पर 'अफगानिस्तानका विदेशमंत्री' बताकर नई दिल्ली ने संकेत दे दिया है कि वह तालिबान हुकूमत को मान्यता देने के करीब है। अगर नई दिल्ली मुत्ताकी को विदेश मंत्री कहने और उसके अनुरूप प्रोटोकॉल देने को राजी है, तो फिर उनकी हुकूमत को आधिकारिक सरकार की मान्यता क्यों नहीं दी जानी चाहिए ? समय आ गया है कि भारत अफगानिस्तानकी तालिबान सरकारको मान्यता दे। इसके नुकसान बहुत कम और रणनीतिक लाभ अधिक हैं। मेरा मानना है कि चार वजहों से नई दिल्ली को अविलंब यह मान्यता देने पर विचार करना चाहिए। लेकिन उससे पहले, इस कदम से जुड़ी कुछ आपत्तियों पर संक्षेप में चर्चा जरूरी है।

तालिबान को राजनयिक मान्यता देने के विरुद्ध सबसे तीखी आपत्ति एक नैतिक तर्क से उपजी है। तर्क यह है कि भारत को एक ऐसे शासन को मान्यता नहीं देनी चाहिए, जो अनिष्टकारी मूल्यों का समर्थन करता हो और अपनी आधी आबादी के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार करता हो। यह तर्क अपनी जगह सही है। मगर इसे स्वीकार करते हुए हमें यह ध्यान रखना होगा किन तो कोई सरकार नैतिक रूप से स्वीकार्य होती है (सिर्फ इसलिए कि वह परिष्कृत रूप में अत्याचार करती है), और न ही अस्वीकार्य, क्योंकि नैतिक मूल्यों वाली किसी व्यवस्था को मान्यता देना उसके मूल्यों या उसकी खामियों का समर्थन करना नहीं है। विश्व राजनीति इससे कहीं ज्यादा जटिल है। हमारा निजी चुनाव तय नहीं कर सकता कि कोई देश कैसे नीतिगत फैसले ले। दूसरी आपत्ति यह है कि तालिबान को वैध शासक के रूप में मान्यता देने का अर्थ जाने-अनजाने इस क्षेत्र में शुद्धतावाद के उदय और घृणित मूल्यों को मजबूत करना होगा। मुझे लगता है, सच इसके ठीक विपरीत है। तालिबान को मान्यता देकर उन्हें मुख्यधारा में लाना, उन्हें बेहतर व्यवहार के लिए तैयार करने का एक तरीका हो सकता है। गौर कीजिए। साल 2025 के तालिबान वही तालिबान नहीं हैं, जो वे 1996 में थे। वे अब थोड़े दुनियादार, कुछ-कुछ उदार और अपने आस-पास की दुनिया से तालमेल बिठाने के आधुनिक तरीकों के प्रति अधिक खुले बन गए हैं। लैंगिक आधार पर भेदभाव के लिए तीखी आलोचना के बाद तालिबान ने भारतीय महिला पत्रकारों को बाद की प्रेस कॉन्फ्रेंस में बुलाकर अपनी गलती सुधारी। कभी-कभी बदलाव सीधे बहिष्कार के बजाय संपर्क, सामाजीकरण और दबाव से भी आता है। भले ही आप असहमत हों, मगर अपने पड़ोस के किसी शासन को सिर्फ इसलिए त्याग देना कि आप उसकी आस्था और परंपराओं से सहमत नहीं हैं, एक गलत शासन कला है।

तीसरी आपत्ति यह की जाती है कि तालिबान के साथ गलबहियां करने से भारत-पाकिस्तान संबंध और ज्यादा खराब हो सकते हैं और यह भारतको अफगानिस्तान के अंदरूनी संघर्षों में उलझा सकता है। वास्तविकता यह है कि भारत-पाकिस्तान संबंध पहले ही अपने निम्नतम स्तर पर हैं और काबुल के साथ बातचीत से इसमें कोई महत्वपूर्ण बदलाव आने की संभावना नहीं है।

अब मैं उन चार वजहों को यहां रखना चाहता हूं कि भारत को तालिबान सरकार को मान्यता क्यों देनी चाहिए! सबसे पहली तो यही कि तालिबान ने आम तौर पर भारत के प्रति सकारात्मक रुख बनाए रखा, सिवाय आईसी814 अपहरण के, जो तालिबान से कहीं ज्यादा पाकिस्तानी आईएसआई की कारस्तानी थी। अगस्त 2021 में काबुल में सत्ता संभालने के बाद से तालिबान ने भारत के साथ अपने संबंध सुधारने के प्रयास किए हैं, जिसमें उसका यह रुख भी शामिल है कि कश्मीर भारत और पाकिस्तान के बीच एक द्विपक्षीय मामला है।

दूसरा कारण, भले ही अब तक बड़े देशों में केवल रूस ने तालिबान सरकार को मान्यता दी है, लेकिन तालिबान पर पश्चिमी दबाव के कम होने और स्थानीय प्रतिरोध में कमी को देखते हुए अब यह केवल समय की बात रह गई है कि अन्य देश कब रूस की राह पकड़ें। यदि नई दिल्ली अन्य देशों द्वारा तालिबान सरकार को मान्यता दिए जाने के बाद उस पर मुहर लगाती है, तो इससे उसके इस कदम का कूटनीतिक महत्व कम हो जाएगा। मगर इसके उलट, शीघ्र मान्यता भारत को रणनीतिक रूप से अग्रणी पंक्ति में ला देगी। इससे अफगानिस्तान के भविष्य को आकार देने में वह अहम खिलाड़ी बन सकता है।

तीसरी वजह, तालिबानी नेतृत्व वाले काबुल से घनिष्ठ रणनीतिक साझेदारी, इस क्षेत्र में भारत का महत्व कम करने की चीनी - पाकिस्तानी योजनाओं से निपटने में उपयोगी रणनीति साबित हो सकती है और यह काबुल के साथ बीजिंग की बढ़ती नजदीकियों को भी संतुलित करने में काम आएगी।

मुत्ताकी की यात्रा के दौरान विदेशमंत्री एस जयशंकर द्वारा 'अफगानिस्तान की संप्रभुता, अखंडता और स्वतंत्रता के प्रति भारत की पूर्ण प्रतिबद्धता' का इजहार मुख्यतः पाकिस्तान लक्षित प्रतीत होता है। मगर इससे पता चलता है कि नई दिल्ली इस इलाके में पाकिस्तान के प्रभाव को नियंत्रित करने के लिए काबुल में बैठी सरकार के साथ सक्रिय रूप से जुड़ने के रणनीतिक मूल्य को पहचानती है। इस पर अब गोल-मोल बातें करने का कोई मतलब नहीं है।

और आखिरी वजह, तालिबान हुक्मरां अंतरराष्ट्रीय मान्यता और वैधता के लिए व्यग्र हैं। ऐसे में, भारत से राजनयिक मान्यता उनके लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होगी । भारत के लिए यह मान्यता काबुल में राजनीतिक सद्भावना की नींव मजबूत करने और उसके साथ रणनीतिक साझेदारी को बढ़ावा देने में मदद कर सकती है। तेजी से बदलते क्षेत्रीय परिदृश्य में नई दिल्ली अपने इस एक कदम से मूल्यवान सद्भावना, रणनीतिक साझेदारी और मध्य एशिया के द्वार पर अपनी मैत्रीपूर्ण उपस्थिति वाला रुतबा हासिल कर सकता है।